P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-II * Issue-XI*July-2015

दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र–एक सकारात्मक परिचय

कमलेश कुमारी रवि
सहायक प्रध्यापिका,
हिन्दी विभाग,
डी.ई.आई. (डीम्ड विश्वविद्यालय),
आगरा

सारांश

हिन्दी दलित साहित्य का शब्द– सौन्दर्य नकार में और प्रहार में है लेकिन सम्मोहन में नहीं है। दलित साहित्य परम्परावादी सौन्दर्यशास्त्र की परिभाषा का विरोध करता है। ललित साहित्य या पारम्परिक साहित्य का मूल प्रयोजन है आनन्द के लिए रसोत्पत्ति। यह आनन्द रस क्षणिक होता है जिसे दलित साहित्य स्वीकार नहीं करता।

एक दलित जिस उत्पीड़न को भोग कर दुःख से साक्षात्कार करता है, वह आनन्दायक कैसे हो सकता हैं? दलित साहित्य भोगी हुई पीड़ा की आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति करता है। इसलिए उसकी श्रेष्ठता शाब्दिक चमत्कारों तक सीमित नहीं है।

मार्क्सवाद भी इस विचारधारा का पक्षधर है कि प्राकृतिक सौन्दर्य की भावना शुद्ध रूप में चेतना की विषयीगत अवस्था ही नहीं, अपितु प्रकृति वस्तुओं और मनुष्य की सामाजिक जीवन में प्राप्त निश्चित विषयगत गुणों के कारण होती है।

कला और साहित्य में सौन्दर्य बोध जहाँ संस्कार जन्य होता है, वही परिवेशगत भी पसन्द–नापसन्द, जीवन–मूल्यों का आधार बनती है। दलित साहित्य सिर्फ एक साहित्यिक आन्दोलन भर नहीं है।

दलित समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, भावनाए स्नाहित्य की भाषा में व्यक्त हो रही है। इस कारण दलित साहित्य हिन्दी की मुख्य धारा के उस सौन्दर्य शास्त्र के वर्चस्व से युक्त जो परम्परागत काव्य शास्त्र से जुडत्रा है। अतः लेखन केवल लिखना ही नहीं, एक कार्यवाही है बुराई के खिलाफ मनुष्य के सतत संघर्ष में लेखन को सप्रयास एक हथियार की तरह इस्तेमाल करना चाहिये।

मुख्य शब्द : दलित साहित्य।

प्रस्तावना

भारतीय साहित्य का मूल मन्त्र, सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् माना जाता है। हमारे भारतीय संस्कृति की एक विशिष्ट अनुभूति है– आनन्द। सौन्दर्य ही केवल आनन्द की अनुभूति का मूल स्रोत नहीं है बल्कि सत्यं तथा सुन्दरं भी है, जिसके प्रयोग से आनन्द की प्राप्ति होती है। यूनानी दार्शनिक अरस्तु के "द ट्रू, द गुड, द बयुटिफूल" का शाब्दिक अनुवाद है 'सत्यम्', शिवम् तथा सुन्दुरम्। लेकिन हिन्दी साहित्य में यह धारणा बंग्ला वाड्.मय के माध्यम से आई। 'साहित्य' शिवं शब्द में ही हित की एवं कल्याण की भावना निहित हो। 'स–हित' से ही साहित्य बना।

सत्य का स्वरूप विज्ञान दर्शन और एवं साहित्य के क्षेत्रों में अलग–अलग होता है। विज्ञान तथ्यों का क्रमबद्ध आकलन सिद्धान्तों की स्थापना करता है। वह सिद्धान्तों के सहारे सत्य की खोज करता है। उसके सिद्धान्त निश्चित होते हैं। जैसे– वैज्ञानिक आधार पर दो और दो सदा चार ही होंगे, पर कला और साहित्य के क्षेत्र में जरूरी नहीं कि वे हमेशा चार ही हों, वे तीन भी हो सकते हैं और पांच भी।

हिन्दी साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र में जीवन और जगत का सत्य, और इसी प्रकार युग–सत्य भी, ज्यों का त्यों साहित्य में नहीं उतरता, बल्कि उसके यथातथ्य रूप में उतरने से साहित्य को क्षति पहुंचती है। ऐसा हिन्दी साहित्य के विद्वानों का मानना है।

बाबू गुलाबराय का मत है कि "कर्तव्य–पथ पर आकर सत्य शिव बन जाता है और भावना से समन्वित होकर सुन्दर के रूप में दर्शन देता है।[1]"

हिन्दी साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र संस्कृत और पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र पर आधारित है। दलित साहित्य के मूल्यांकन में उसकी कसौटियाँ अक्षम साबित हुई है। जिस प्रकार संस्कृत साहित्य का मूल आधार सामन्तवादी एवं ब्राह्मणवादी

दृष्टिकोण है। उसी प्रकार पाश्चात्य साहित्य की सौन्दर्य दृष्टि भी पूंजीवादी एवं सामान्तवादी है।

दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र के अन्तर्गत दलित साहित्य के सौन्दर्यतत्व को पहचानने से पूर्व उसकी विषय वस्तु एवं उसकी मूल संवेदना की पहचान अनिवार्य है। सौन्दर्यशास्त्र के इस चक्रव्यूह में हिन्दी साहित्य अपना कोई स्थान नहीं बना पाया। संस्कृत साहित्य के प्रति अभिजात्य वर्ग के हिन्दी लेखकों का मोह संस्कारगत था। उनकी सामाजिक, धार्मिक सोच उन्हें संस्कृत साहित्य की ओर ही आकर्षित करती थी जबकि स्थितियाँ एवं परिवेश भिन्न–भिन्न थे। एक तरफ तो जहाँ सिद्ध कवियों, नाथों का जीवन और उनकी भाषा तथा अभिव्यक्ति उन्हें संस्कृत साहित्य से अलग करती थी, वहीं उनके मूल्य और आदर्श भी अलग थे। बहरहाल हिन्दी साहित्य के मूल्यांकन हेतु संस्कृत साहित्य को ही आधार बनाया गया। इसका कारण ब्राह्मणवादी सोच का वर्चस्व हिन्दी साहित्य की मूल प्रवृत्ति को संस्कृतनिष्ठ बनाने की प्रक्रिया से गुजर रहा था।

मार्क्सवादी चिन्तक श्री शिवकुमार मिश्र भी इस विचार से सहमत है। उनके अनुसार "जिस काव्यशास्त्र या साहित्यशास्त्र द्वारा निर्धारित प्रतिमानों से प्राणरस लेकर सदियों– सहस्राब्दियों से भारतीय रचनाशील विकसित और पल्लवित होती रही हैं, महान रचनाकारों की विश्वविख्यात रचनाएँ जिसकी कीर्तिपताका फहरा रही हैं, वह काव्यशास्त्र या साहित्यशास्त्र भी अन्ततः उसी कुलीन मानसिकता की देन है, जो हमारे सामाजिक विधान की भी स्रष्टा है। इस काव्य शास्त्र में अभिजनोचित रुचियों, रूझानों, संस्कारों और सौन्दर्य बोध का ही तो वर्चस्व है। उच्च कुलोत्पन्न, धीरोदत्त व्यक्ति, ही इनमें नायकत्व का अधिकारी कहा गया है। सौन्दर्य के प्रतिमानों और भावों का गामभीर्य तथा उज्ज्वलता भी यहाँ अभिजनोचित रुचियों, रुझानों, संस्कारों और सौन्दर्य बोध का ही तो वर्चस्व है। उच्चकुलोत्पन्न, धीरोदात्त व्यक्ति ही इनमें नायकत्व का अधिकारी कहा गया हैं सौन्दर्य के प्रतिमानों और भावों का गाम्भीर्य तथा उज्ज्वलता भी यहाँ अभिजनोचित रूचियों के आधार पर तय की गई है और देखी गयी है।"[2]

इस संबंध में कमलेश कुमारी रवि लिखती हैं कि "दलित साहित्य व्यक्तिगत स्वानुभूति से सम्पृवत्त होने के साथ ही सामुदायिक जनों के अनुभवों की अनुभूति भी है।"

दलित लेखकों की कविताओं और कहानियों में प्रयुक्त भाषा में सामुदायिक जनों की स्वानुभूति दृष्टिगोचर होती हैं, दलित साहित्यकारों के साहित्य में दलित जीवन की अथवा परिवेश की छाप की भाषा अपनी सहजता एवं सरलता के साथ प्रभुत्वशाली रूप ग्रहण करती है। अतः दलित साहित्य केवल स्वानुभूति की अभिव्यक्ति ही नहीं, अपितु सामुदायिक जनों की पीड़ा है। इसकी भाषा बहुत ही सरल, सुबोध और आम बोलचाला की तथा रोजमर्रा की भाषा है।

दलित साहित्य में 'सहृदय' और साहित्य कला विहिन नरः साक्षात पशु पुच्छ पिशान विहिनः" की शास्त्रीय अवधारणा को ऊपरी सिरे से नकारता है। यह साहित्य को कुछ अभिजातीय वर्ग और सह्य लोगों की सम्पत्ति नहीं मानता। भारतीय साहित्य जहाँ कुछ गिने–चुने 'सहृदय' तथा अभिजातीय एवं कुलीन लोगों का साहित्य है, वहीं दलित साहित्य सर्वहारा, दलित और सामान्य जनों का साहित्य है। दलितों का साहित्य किसी कक्षा में दिया गया व्याख्यान नहीं, अपितु एक सामुदायिक साहित्य है। इसलिये इसकी भाषा आम लोगों की भाषा है। वह आमजन की पीड़ा और सहानुभूति की नहीं, समुदाय की पीड़ा और स्वानुभूति की भाषा है।

अभिजात्य वर्गीय आलोचकों ने दलित साहित्य की भाषा पर सपाटबयान बाजी का आरोप लगाया है। इस विषय में दलित साहित्यकारों का जवाब है कि दलित जीवन की विसंगतियाँ, उत्पीड़न, शोषण और दमन की दंभ अभिव्यक्ति के लिए ऐसी ही सरल, सहज और सटीक भाषा अधिक उपयुक्त है। क्योंकि आम लोग, कम पढ़े–लिखे इसके पाठक हैं। इनमें आक्रोश और पीड़ा के स्वर मुखरित हैं। यह नकार और विरोध की भाषा है। इनमें आक्रोश है और पीड़ा की छटपटाहत है।

मनुस्मृति में टके वे शब्द ही तो बोलते हैं– हे राम! अधर्म बढ़ रहा है शूद्र शिक्षा पा रहे हैं ब्राह्मण बालक असमय काल के ग्रास हो रहे हैं। ब्राह्मण के वचन सुन राम बोले–कौन है वह दुस्साहसी, दुःसाहस कर रहा, जो। मुझे बताओं। इस पर ब्राह्मण पुरुषोत्तम राजा राम को लेकर शम्बुक ऋषि के आश्रम में ले जाते है, जहाँ वे प्रवचन कर रहे थे। राम शम्बुक ऋषि के प्रवचनों को सुनकर बहुत प्रभावित होते हैं पर यह पता चलने पर कि यही शम्बुक ऋषि है, तब ताव में आकर सिर कलम कर देते हैं। राम चला गया, अम्बेडकर काल आ गया। शम्बुक की चीख आज भी गूंज रही है। दलित रूपी बेलों की पीठ पर चोट के निशान। शब्द सिसकियां नहीं भरते हैं, फोड़ते हैं, चोट करते हैं जैसे चमार से हरिजन और हरिजन से दलित।

दलित साहित्यकार की भाषा केवल दरांती। खुरपे की तरह धारदार नहीं अपितु नदी के दनदनाते जल के वेग की तरह, जो मुक्ति की छटपटाहट में नदी के कूल रूपी अंधविश्वासी सामाजिक कारागर को त्रस्त–नष्ट करना चाहती है। दलित साहित्यकार कबीर की भांति तीखी और भेदक भाषा के साथ अपने दग्ध अनुभवों को सीधे–सीधे साहित्य में बिना किसी लागलपेट के साथ परोस देना है।

डॉ0 दयानन्द बटोही अपनी कविता "दोर्णाचार्य सुने?:उनकी कविताएं सुनें" में लिखते हैं "तुम्हारी परम्पराएं अब नहीं चलेंगी" अब एकलव्य को नहीं मैंने आगाह कर दिया है यदि बनना है शिष्य डॉ० अम्बेडकर का बनो बाइस घंटे उन जैसा पढ़ों गढ़ो संविधान, कानून सृजों मनु जैसा मत। द्रौण आते हैं आने दो, एकलव्य मैं पहले था। आज भी हूँ, अब जान गया हूँ, अंगूठा का दान क्यों मांगते हो। मैं अब भी वही गुरू भक्त एकलव्य हूँ। जो पहले था आज भी हूँ।"[3]

दलित साहित्य की भाषा आक्रोशपूर्ण और विरोधजनित भाषित अभिव्यंजना अर्थपूर्ण है। सामाजिक सन्दर्भों से अपनी अभिव्यक्ति में वह एक आन्दोलन का आह्वान करती है। दलित साहित्य में चुनौती शीर्षक में छिपी वेदना को देखा जा सकता है कि "हमारी भागीदारी के लिए। योग्यता की शर्त। कब तक फेंकोगे तुम। अपना

मकड़ जाल हम पर?। घबराओं नहीं। समय आ रहा है। जब हम भी बदेंगे तुमसे। दौड़ने की शर्त। जीतेंगे बाजी। तोड़ेंगे तुम्हारा दर्य। सुनो! परिवर्तन की सुगबुगाहट/ हवा का रुख। पहचानो! पहचानो। पहचानो।।"[4]

इस प्रकार दलित साहित्यकारों की भाषा झंनाटेदार, धमाकेदार तथा दमदार है।

दलित साहित्यकार इतिहास के काले अध्यायों में ढँकी अपनी अस्मिता की तलाश भी करना चाहते हैं'– "आ, मेरे अज्ञात अनाम पुरखों। तुम्हारे मूक शब्द जल रहे हैं। दहकती राख की तरह। राखः जो लगातार कांप रही है। रोष से भरी हुई। मैं जानना चाहता हूँ। तुम्हारे शब्द.... / तुम्हारा भय...। जो तमाम हवाओं के बीच भी। जल रहे हैं। दीये की तरह युगों–युगों से।"[5]

दलित साहित्य का शब्द–सौन्दर्य नागिन की फुंकार में है, सम्मोहन में नहों। वह समाज और साहित्य में शताब्दियों से प्रवाहित होती आ रही सड़ी–गली परम्पराओं पर बेदर्दी से चोट करता है। वह शोषण और अत्याचार के बीच जीवन से हताश, जीवन जीने वाले दलितों को लड़ना सिखाता है, वह सिर पर पत्थर ढ़ोने वाली मजदूर महिला को उसके अधिकारों के विषय में जाग्रत करता है। उसे धर्म की भूल–भूलैया से निकालकर शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखाता है। उसके लिए जिस शाब्दिक प्रहार क्षमता की आवश्यकता है, वह उसमें है, और यही दलित साहित्य का शिल्प है और सौन्दर्य है।[6]

दलित साहित्य में प्रयोग में आनेवाली भाषा और उनमें प्रयोग होने वाले शब्द बहुजन व्यवहार के हैं। अतः इन्हें अश्लील, नकार अथवा वर्जित नहीं कहा जा सकता। इसके बिना दलित साहित्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि दलित साहित्य कल्पना में नहीं जीता। वह जीवन और जमीन के कडुवे अनुभवों के स्वाद से सिंचित होता है।

स्वानुभूति साहित्य की भाषा पर गाली–गलौज के आरोप का उत्तर देते हुए प्रखर आलोचक कंवल भारती कहते हैं कि "यह बताओ! बलात्कार की शिकार। तुम्हारी माँ की भाषा कैसी होगी? कैसे होंगे। गुलामी की जिन्दगी को जीने वाले। तुम्हारे बाप के विचार? ठाकुर की हवेली में दम तोड़ती। तुम्हारी बहिन के शब्द? क्या वे सुन्दर होंगे।"[7]

अभिजात्य वर्ग के साहित्यकारों ने दलित साहित्य को गाली–गलौच का साहित्य भी कहा है। नामवर सिंह जैसे आलोचक तथा राजेन्द्र यादव जैसे जनवादी लेखकों ने भी दलित साहित्य की भाषा पर सवाल उठाये हैं दलित साहित्यकारों की यादाश्त बड़ी कमजोर है कि दलित लोगों को सवर्ण लोग कैसे–कैसे अशिष्ट शब्दों का प्रयोग करते हैं। गालियों का प्रयोग एवं असभ्य और असंस्कृत भाषा प्रयोग होती है।? क्या उन्हें अपने शास्त्रों का ज्ञान नहीं–जिनमें लिखा है कि दलित–शूद्रों को शिष्ट और संस्कृत भाषा का प्रयोग निषेध है। कमलेश रवि कहती है कि गाली–गालैच का साहित्य, दलित साहित्य नहीं है। दलितजन जिस परिवेश में सांस ले रहा है वे गालियाँ उसी परिवेश में है। गालियाँ दलित साहित्य के परिवेश से कैसे निकाल सकते हैं? क्योंकि दलित साहित्य समाज का दर्पण है? यथार्थ का यथार्थ दर्पण उनकी समग्रता में ही हो सकता है। दलित साहित्य व्यवस्था विरोधी साहित्य है। सवर्ण लोग जिन असंस्कृत शब्दों एवं भाषा का प्रयोग दलितों को अपमानित करने के लिए करते हैं। दलित लेखक उन शब्दों का प्रयाग अपने साहित्य में यदि ज्यों का त्यों कर, सभ्य समाज को वापिस करना चाहते हैं तो हर्ज क्या है? वे गालियाँ कैसे हो सकती है?

निष्कर्षत मेरे विचार से जीवन दर्शन अनुभूति और अनुभव की वास्तविकता भारतीय साहित्य में कभी आई ही नहीं है। अतः हिन्दी समीक्षकों द्वारा सेमित समीक्षा मूल्य और उनके सौन्दर्य मीमांसा के तरीके अलग हैं।
सवर्ण साहित्य व्यक्तिगत सुखान्त साहित्य है जिसका प्रयोजन है आनन्द के लिए रस की उत्पत्ति और यह आनन्द क्षणभंगुर होता हैं अतः दलित साहित्य इसे स्वीकार नहीं करता है।वह साहित्य जिसका साक्षात्कार करके या पढ़कर एक शोषित दुःख अथवा वेदना का अनुभव करता है। वह आनन्ददायक कैसे हो सकता है? विशेषकर शोषितों के लिए। दलित साहित्य आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति करने वाला साहित्य है उसकी अभिव्यक्ति न तो शाब्दिक और न ही चमत्कारों तक सीमित है। अर्थसम्मत साहित्य ही दलितो और शोषितों का जीवन–मूल्य है और यह ही दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र का आधार है।

अर्थ– गाम्भीर्य दलितों का स्वीकृत जीवन–मूल्य है, जो लार्ड बुद्ध और डॉ. अम्बेडकर के शिक्षित बनों संगठित रहो तथा संघर्ष करो आदि मूल मन्त्र के तत्त्वज्ञान पर केन्द्रित है। ये जोवन मूल्य हैं–

1. समता, स्वतन्त्रता, बन्धुता, न्याय के जीवन अनुभव, अनुभवजन्य, आशय तथा आशय की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति।
2. संस्कृति और धर्म के नाम पर वास्तविकता को छिपाकर रखे गए ढोंग को नकारना।
3. कल्पनाजन्य प्रतिमानों का निषेध। जैसे– 'अमृत' मधुर पेय की कल्पना लेकिन उसका आस्वाद किसी ने नहीं जाना।
4. नित्यपरिवर्तनीयता के आधार पर जीवन–मूल्यों का मूल्यांकन।
5. बन्धन –मुक्त अभिव्यक्ति और अनुभवों का सच्चापन जैसा देखा वैसा भोगा उसका वैसा ही चित्रण।[8]

संक्षेप में दलित साहित्य उद्देश्य, लक्ष्य, आशय तथा प्रयोजन को मानता है तथा वस्तु एवं शिल्प उसके समक्ष गौण है। अनुभवजन्य प्रामाणिकता विषय को अर्थगाम्भीर्यता की ओर ले जाती है। अतः दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र का स्वरूप पारम्परिक सवर्ण साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र से फर्क हैं। कुछ सवर्ण समीक्षक चिन्तित हैं कि दलित सौन्दर्यशास्त्र को विकसित करने की क्या आवश्यकता है? स्वर्ण लेखकों की इस चिन्ता का कारण संस्कारगत भावना एवं अवधारणा है। दलित लेखकों के अनुसार कला तथा साहित्य में सौन्दर्यशास्त्र जहाँ संस्कारजन्य हेाता है वहीं परिवेशजन्य भी होता है। अतः दलित साहित्यकारों की यह जुम्मेदारी बनती है कि इतिहास स लेकर साहित्य तक जो समाज आज तक हाशिये पर रहा है उस दलित समाज के सवालों को,

उनकी आकांक्षाओं, विचारो और सोच को साहित्य के माध्यम से समाज की मुख्य धारा से जोड़ने के हेतु ललित साहित्य, श्रृंगारिक साहित्य एवं अलंकारिक साहित्य रचने वाली ताकतों का ध्यान व कलम इस और घुमायें।

हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य एक ऐसा लेखन है जहाँ प्रस्तुतीकरण नवीन संवेदना एवं जीवनानुभव के साथ जुडी हैं। यहाँ नये प्रकार के संदर्भ हैं, दृश्य बिंब हैं श्रम है और श्रम करने वाले श्रमिक एवें उनकी जाति है। जातिगत पूरा परिवेश है। सड़ांधती गंदगी में जीवन यापन करता मनुष्य उसका परिवार, सामाजिक संबंध है जो साहित्य से अभी तक नदारद थे। इसमें इतिहास की विवेचना है लेकिन शास्त्र नदारद है। नया.... न्यायथार्थ बोध है। दलित साहित्य यदि शास्त्रीय सिद्धान्त के आधार पर देखा जाये तो, वह अनगढत और अकलात्मक भी है। जो लोग यह कहते हैं कि सौन्दर्यशास्त्र का जाति, वर्ग, समुदाय तथा विचारधारा से कोई सरोकार नहीं है वे मूर्ख हैं। बहुजन कथा पाठकों को गुमराह करने वाले हैं। स्वान्तः परम्परावादी सौन्दर्यशास्त्र की परिभाषा का दलित साहित्य विरोध करता है जिसकी जुडें सामान्य विषयगत गुणों में नहीं है। प्रकृति के उपकरण अपने में सुन्दर भी हो सकते हैं और असुन्दर भी, सौन्दर्य की भावना तो परिवेशगत एवं परिस्थितिगत भी पैदा होती है। हिन्दी साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र संस्कृत के काव्यशास्त्र सौन्दर्यशास्त्र से जुड़ा होने के कारण हिन्दी की मुख्य धारा के उस सौन्दर्यशास्त्र के वर्चस्व से मुक्त है तथा कटा हुआ है क्योंकि प्राकृतिक सौन्दर्य की भावना शुद्ध रूप में चेतना की विषयीगत अवस्था नहीं हो सकती बल्कि प्रकृतिक वस्तुओं और मनुष्य की सामाजिक जीवन में प्राप्त विषयगत गुणों के कारण होती है, वैसे ता दुनिया का कोई भी सौन्दर्यशास्त्र एक दिन में नहीं रचा जाता। इसके पीछे अनुभाव की एक लम्बी विचारधारा होती है। किसी भी साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र सामाजिक परिवेश से प्रभावित होता है साहित्य की अभिव्यक्ति एवं शिल्प भी इससे अछूत नहीं रह सकते हैं। हिन्दीसाहित्य का सौन्दर्यशास्त्र सवर्ण मानसिकता की एक सोची समझी बूझी से सना हुआ है।

संदर्भ सूची

1. सं. सुधाकर पाण्डेय– हिन्दी साहित्य चिन्तन–2000, कला मन्दिर दिल्ली – 733
2. ओमप्रकाश बाल्मीकि – दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र – राधाकृष्ण, नई दिल्ली चौथा संस्करण 2011
3. सं० विमल थोरात, सूरज बडत्या– भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर – रावतपाब्लि केशन, नई दिल्ली 56–57
4. हरिनारायण ठाकुर–दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ–न्यू दिल्ली–118
5. हरिनारायण ठाकुर–दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ–न्यू दिल्ली–118, दूसरा संस्करण : 2010, 119
6. ओमप्रकाश बाल्मीकि – दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र – राधाकृष्ण, नई दिल्ली चौथा संस्करण 2011, 48
7. हरिनारायण ठाकुर–दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ–न्यू दिल्ली–118, दूसरा संस्करण : 2010, 116
8. ओमप्रकाश बाल्मीकि – दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र – राधाकृष्ण, नई दिल्ली चौथा संस्करण 2011, 50